P. R. No.: DL(S)-17/3082/2012-14
Rgn. No.: DELHIN/2000/2473
Date of Post : 27-28

SEVA-DHAM HOSPITAL
(YOGA, AYURVEDA, NATUROPATHY & PHYSIOTHERAPY)

Relax Your Body, Mind & Soul In A Spiritual Environment
Truly rejuvenating treatment packages through
Relaxing Traditional Kerala Ayurvedic Therapies

SEVA-DHAM HOSPITAL
K. H.-57, Ring Road, Behind Indian Oil Petrol Pump, Sarai Kale Khan,
New Delhi-110013. Ph. : +91-11-26320000, 26327911 Fax : +91-1126821348
Mobile : +91- 9999 60 9878, Website : www.sevadham.info

प्रकाशक व मुद्रक : **श्री अरुण तिवारी,** मानव मंदिर मिशन ट्रष्ट (रजि.)
के.एच.–57 जैन आश्रम, रिंग रोड़, सराय काले खाँ, इंडियन ऑयल पेट्रोल पम्प के पीछे,
पो. बो.–3240, नई दिल्ली–110013, आई. जी. प्रिन्टर्स 104 (DSIDC) ओखला फेस–1
से मुद्रित।
संपादिका : श्रीमती निर्मला पुगलिया

कवर पेज सहित
36 पृष्ठ

मूल्य 5.00 रूपये
दिसम्बर, 2012

सुपरसेवा

जीवन मूल्यों की प्रतिनिधि मासिक पत्रिका

रूपरेखा

जीवन मूल्यों की प्रतिनिधि मासिक पत्रिका

वर्ष : 12 अंक : 12 दिसम्बर, 2012

: मार्गदर्शन :
पूज्या प्रवर्तिनी साध्वी मंजुलाश्री जी

: संयोजना :
साध्वी वसुमती
साध्वी पद्मश्री

: परामर्शक :
श्रीमती मंजुबाई जैन

: सम्पादक :
श्रीमती निर्मला पुगलिया

: व्यवस्थापक :
श्री अरूण तिवारी

वार्षिक शुल्क : 60 रुपये
आजीवन शुल्क : 1100 रुपये

: प्रकाशक :
मानव मंदिर मिशन ट्रस्ट (रजि.)
पोस्ट बॉक्स नं. : 3240
सराय काले खाँ बस टर्मिनल के सामने, नई दिल्ली - 110013
फोन नं.: 26315530, 26821348
Website: www.manavmandir.info
E-mail: contact@manavmandir.info

इस अंक में

01. आर्ष-वाणी - 5
02. बोध-कथा - 5
03. शाश्वत स्वर - 6
04. गुरूदेव की कलम से - 7
05. चिंतन-चिरंतन - 12
06 गोष्ठी-चर्चा - 15
07. चुटकुले - 28
08. बोलें-तारे - 29
09. स्वास्थ्य - 31
10. समाचार दर्शन - 32
11. झलकियां - 33

रूपरेखा-संरक्षक गण

श्री वीरेन्द्र भाई भारती बेन कोठारी, ह्युष्टन, अमेरिका
डॉ. प्रवीण नीरज जैन, सेन् फ्रेंसिस्को
डॉ. अंजना आशुतोष रस्तोगी, टेक्सास
डॉ. कैलाश सुनीता सिंघवी, न्यूयार्क
श्री शैलेश उर्वशी पटेल, सिनसिनाटी
श्री प्रमोद वीणा जवेरी, सिनसिनाटी
श्री महेन्द्र सिंह सुनील कुमार डागा, बैंकाक
श्री सुरेश सुरेखा आबड़, शिकागो
श्री नरसिंहदास विजय कुमार बंसल, लुधियाना
श्री कालू राम जतन लाल बरड़िया, सरदार शहर
श्री अमरनाथ शकुन्तला देवी, अहमदगढ़ वाले, बरेली
श्री कालूराम गुलाब चन्द बरड़िया, सूरत
श्री जयचन्द लाल चंपालाल सिंघी, सरदार शहर
श्री भंवरलाल उम्मेद सिंह शैलेन्द्र सुराना, दिल्ली
श्रीमती कमला बाई धर्मपत्नी स्व. श्री मांगेराम अग्रवाल, दिल्ली
श्री प्रेमचन्द ओमप्रकाश जैन उत्तमनगर, दिल्ली
श्रीमती मंगली देवी बुच्चा धर्मपत्नी स्व. शुभकरण बुच्चा, सूरत
श्री पी.के. जैन, लॉर्ड महावीरा स्कूल, नोएडा
श्री द्वारका प्रसाद पतराम, राजली वाले, हिसार
श्री हरबंसलाल ललित मोहन मित्तल, मोगा, पंजाब
श्री पुरुषोत्तमदास बाबा गोयल, सुनाम, पंजाब
श्री विनोद कुमार सुपुत्र श्री बीरबल दास सिंगला,
श्री अशोक कुमार सुनीता चोरड़िया, जयपुर
श्री सुरेश कुमार विनय कुमार अग्रवाल, चंडीगढ़
श्री देवकिशन मून्दडा विराटनगर नेपाल
श्री दिनेश नवीन बंसल सुपुत्र
श्री सीता राम बंसल (सीसवालिया) पंचकूला
श्री हरीश अलका सिंगला लुधियाना पंजाब
श्री केवल आशा जैन, टेम्पल, टेक्सास
श्री चैनरूप सुशील कुमार पारख, हनुमानगढ़
श्री श्यामलाल वीणादेवी सातरोदिया, हिसार

श्री उदयचन्द राजीव डागा, ह्युष्टन
श्री हेमेन्द्र, दक्षा पटेल न्यूजर्सी
श्री प्रवीण लता मेहत्ता ह्युष्टन
श्री अमृत किरण नाहटा, कनाडा
श्री गिरीश सुधा मेहता, बोस्टन
श्री राधेश्याम सावित्री देवी हिसार
श्री मनसुख भाई तारावेन मेहता, राजकोट
श्रीमती एवं श्री ओमप्रकाश बंसल, मुक्सर
डॉ. एस. आर. कांकरिया, मुम्बई
श्री कमलसिंह-विमलसिंह बैद, लाडनूं
श्रीमती स्वराज एरन, सुनाम
श्रीमती चंपाबाई भंसाली, जोधपुर
श्रीमती कमलेश रानी गोयल, फरीदाबाद
श्री जगजोत प्रसाद जैन कागजी, दिल्ली
डॉ. एस.पी. जैन अलका जैन, नोएडा
श्री राजकुमार कांतारानी गर्ग, अहमदगढ़
श्री प्रेम चंद जिया लाल जैन, उत्तमनगर
श्री देवराज सरोजबाला, हिसार
श्री राजेन्द्र कुमार केडिया, हिसार
श्री धर्मचन्द रवीन्द्र जैन, फतेहाबाद
श्री रमेश उषा जैन, नोएडा
श्री दयाचंद शशि जैन, नोएडा
श्री प्रेमचन्द रामनिवास जैन, मुआने वाले
श्री संपतराय दसानी, कोलकाता
लाला लाजपत राय, जिन्दल, संगरूर
श्री आदीश कुमार जी जैन, दिल्ली
मास्टर श्री बैजनाथ हरीप्रकाश जैन, हिसार
श्री केवल कृष्ण बंसल, पंचकूला
श्री सुरनेश कुमार सिंगला, सुनाम, पंजाब
श्री बुधमल राजकरण, तेजकरण सिंघी, सरदार शहर

आर्ष-वाणी

चंचलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम्।।

(भगवद्गीता)

अर्थात- भगवन यह मेरा मन बड़ा चंचल है। प्रमादी है, हठी है, जिद्दी है वायु की तरह इसे पकड़ में लेना अत्यन्त दुष्कर है, मैं इसका निग्रह कैसे करूं?

बोध-कथा

जीवन का रहस्य

यह घटना उस समय की है जब मानव का जन्म नहीं हुआ था। विधाता जब सूनी पृथ्वी को देखता तो उसे कुछ न कुछ कमी नजर आती और वह इस कमी की पूर्ति के लिए दिन-रात सोच में पड़ा रहता। आखिर विधाता ने चंद्रमा की मुस्कान, गुलाब की सुगंध, अमृत की माधुरी, जल की शीतलता, अग्नि की तपिश, पृथ्वी की कठोरता से मिट्टी के पुतले में प्राण का संचार होते ही सब ओर चहचहाट व रौनक हो गई और घरौंदे महकने लगे। देवदूतों ने विधाता की इस अद्भुत रचना को देखा तो आश्चर्यचकित रह गए और विधाता से बोले, 'यह क्या है?' विधाता ने कहा- 'यह जीवन की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव है। अब इसी से जीवन चलेगा और वक्त आगे बढ़ेगा।' विधाता की बात पूरी भी न हो पाई थी कि एक देवदूत बीच में ही बोल पड़ा, 'क्षमा कीजिए प्रभु। लेकिन यह बात हमारी समझ से परे है कि आपने इतनी मेहनत कर एक मिट्टी को आकार दे दिया। उसमें प्राण फूंक दिए। मिट्टी तो तुच्छ से तुच्छ है जड़ से भी जड़ है। मिट्टी की बजाय अगर आप सोने अथवा चांदी के आकार में यह सब करते तो ज्यादा अच्छा रहता।' देवदूत की बात पर विधाता मुस्करा कर बोले- 'यही तो जीवन का रहस्य है। मिट्टी के शरीर में मैंने संसार का सारा सुख-सौंदर्य, सारा वैभव उड़ेल दिया है। जड़ में आनंद का चैतन्य फूंक दिया है। इसका जैसे चाहो उपयोग करो। जो मानव मिट्टी के इस शरीर को महत्व देगा वह मिट्टी की जड़ता भोगेगा, जो इससे ऊपर उठेगा, उसे आनंद के परत-दर-परत मिलेंगे। लेकिन ये सब मिट्टी के घरौंदे की तरह क्षणिक हैं। इसलिए जीवन का प्रत्येक क्षण मूल्यवान है। तुम मिट्टी के अवगुणों को देखते हो उसके गुणों को नहीं। मिट्टी में ही अंकुर फूटते हैं और मेहनत से फसल लहलहाती है। सोने अथवा चांदी में कभी भी अंकुर नहीं फूट सकते। इसलिए मैंने मिट्टी के शरीर को कर्मक्षेत्र बनाया है।

शाश्वत स्वर

शांत मन में ही अपना सही अक्स दीखता है

सभी महापुरुषों का यह कहना है कि ज्ञान उपलब्ध करना है तो पहले मनको शांत बनाओ। चंचलता को हटाओ। शांत मन में ही ज्ञान का अवरतण होता है। शांत स्थिर झील में हम अपना प्रतिबिंब देख सकते हैं। अस्थिर और अशांत झील में लहरें उत्पन्न होने पर फिर उसमें कोई अपना प्रतिबिंब नहीं देख सकता। प्रतिबिंब देखने के लिए झील के शांत होने का इंतजार करना ही पड़ेगा।

भगवान बुद्ध के परम शिष्य आनंद ने एक बार उनसे यह प्रश्न किया कि भंते, ज्ञान का पथ इतना कठिन क्यों है? दुखी संसार ज्ञान को ग्रहण क्यों नहीं कर पाता? कुछ क्षण बुद्ध मौन रहे, फिर आनंद से कहा, जाओ, सामने से सोते में से थोड़ा निर्मल जल ले आओ।

आनंद गया, पर थोड़ी देर में खाली हाथ वापस लौट आया। बुद्ध ने रिक्त पात्र लिए लौटने का कारण पूछा तो आनंद ने कहा- भंते, अभी एक बैलगाड़ी उस सोते पर से होकर गुजरी थी, इसलिए पानी में कीचड़ घुला था। स्वच्छ जल अभी नहीं मिल पाएगा।

थोड़ी देर बाद बुद्ध ने फिर आनंद को जल लाने का आदेश दिया। अब कीचड़ नीचे बैठ चुका था, अतः आनंद उपर से स्वच्छ जल लेकर लौट आया। बुद्ध ने समझाया, देखो आनंद, जब नाले में से गाड़ी गुजरी थी, तब हलचल के कारण जल में कीचड़ मिल गया था। थोड़ी देर बाद जब जल में स्थिरता आई, तब कीचड़ बैठ गया और स्वच्छ जल उपलब्ध हो गया। बुद्ध ने सार रूप में समझाया। यही स्थिति मानव मन की है? जब मन की वृत्तियां विषयों के कीचड़ में लिप्त रहती हैं, तब मन अस्थिर और अशांत रहता है। उस समय उसमें आत्मज्ञान का प्रतिबिंब नहीं उभर पाता, किंतु जब इन विषयों से मन को मुक्त कर दिया जाता है, तब वृत्तियां स्थिर हो जाती हैं और शांति के उन क्षणों में ही ज्ञान का आलोक प्राप्त हो पाता है। अपने सामान्य जीवन में हमने शांति के प्रति कुछ विचित्र तर्क गढ़ लिए हैं। जैसे, हम सदैव शांत ही रहते हैं, जब तक कि कोई व्यक्ति या परिस्थिति हमें अशांत न कर दे। शांति हमारा स्वभाव ही है, परंतु इस व्यावहारिक जगत में अशांत हुए बिना काम कैसे चल सकता है।

स्मरण रहे, संसार यथावत चलता रहेगा, स्थितियां यथावत बनी रहेंगी, क्योंकि त्रिगुणात्मक प्रकृति से निर्मित मानव मन, अपूर्णता से पूर्णता को अचानक कभी नहीं प्राप्त हो जाता।

-प्रस्तुति : निर्मला पुगलिया

अंत नहीं होता शस्त्र-परम्परा का

भगवान महावीर कहते हैं शस्त्र की परंपरा आगे बढ़ती जाती है। यह कभी रुकती नहीं। यह संभव है कि किसी बिन्दु पर उसे यथास्थिति में रखा जा सके। अगर शस्त्र का अस्तित्व है तो उसकी परम्परा अनिवार्यतः होगी और वह अपनी मूल प्रकृति के कारण आगे से आगे बढ़ती ही जाएगी।

मानव जाति का इतिहास इस नग्न सत्य का साक्षी है। प्राग्ऐतिहासिक युग का मानव पत्थरों से लड़ता था। पुरातत्व-वेत्ताओं ने पूर्व प्रस्तर एवं प्रस्तर युगों में व्यवहृत पत्थर के चाकुओं, कुल्हाड़ियों और गदाओं को प्रायः समस्त प्राग्ऐतिहासिक सभ्यताओं में पाया है। कालान्तर में तीर-कमान बने। हाथी दांत, लकड़ी, गेंडे के सींग आदि का प्रयोग महाभारत और उसके समकालीन ग्रन्थों में आया है। ताम्र और लौह-युगीन सभ्यताओं के साथ तलवार, कृपाण, भाले, बरछियां आदि बने और इनका प्रयोग भारत में तो मुगलों के आने तक चलता रहा। उनके साथ बारूद आई। बाबर ने राणा सांगा पर बारूद की ताकत से विजय पाई। बारूद और विस्फोटकों का विकास अधिकतर पश्चिम में हुआ। मुगलों के तोपखानों का संचालन और विकास, डचों, फ्रांसीसियों और पुर्त्तगालियों ने किया। फिर अंग्रेज आए। प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध में बारूद का व्यापक प्रयोग हुआ।

जिस व्यक्ति के नाम पर संसार का सर्वश्रेष्ठ नोबल पुरस्कार दिया जाता है, वह डाइनामाइट का अविष्कारक था। आज ये सब बहुत पीछे रह गए हैं। परमाणु शक्ति की खोज तथा उसके शस्त्र-रूप में हिरोशिमा तथा नागासाकी पर द्वितीय महायुद्ध के दौरान अमेरिका द्वारा प्रयोग विश्व-युद्धों के इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। एयर मार्शल टिबेट्स जिसने ये बम गिराए थे, अपने हाथों हुई संहार लीला देखी तो उसका सारा मानसिक संतुलन डगमगा गया। अपराध से पीड़ित उसकी मानवीय संवेदना अनेक बार मानसिक चिकित्सा से गुजरने के बाद भी उसे जन्म-भर पीड़ा देती रही। परमाणु शस्त्रों की अन्धी दौड़ ने पचास मेगाटन और सौ मेगाटन के विश्व-विनाशक शस्त्रों का निर्माण करने के बाद भी संतोष नहीं पाया है। युद्ध विशेषज्ञों का अनुमान है कि आने वाले चन्द दशकों में जहरीली गैसों तथा रोगाणुओं का प्रयोग भी युद्धों में हो सकता है।

भय है जनक शस्त्रों का

मानसिक विकृतियों का भी शस्त्र रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इनके प्रयोग द्वारा पूरा संसार पागलों और अपराध कर्मियों से भरा जा सकता है। भावी शस्त्रों की भयंकर संभावनाओं के आतंक से सारा मानव-समाज पीड़ित है। विश्व के प्रमुख वैज्ञानिकों और राजनेताओं ने बार-बार निःशस्त्रीकरण की आवाज उठाई। शस्त्रों को परिसीमित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संधियां होती रही हैं और उनका उल्लंघन करते हुए सारे देश शस्त्र-निर्माण में लगे हैं। क्योंकि किसी को किसी का विश्वास नहीं है। सबको एक दूसरे से भय है। भय से भयानक शस्त्रों का निर्माण होता जा रहा है और उनसे भय बढ़ता ही जा रहा है। अनेक बार सारे पारमाणविक शस्त्रों को सुदूर आकाश में ले जाकर नष्ट कर देने के प्रस्ताव विश्व के विकसित राष्ट्रों ने एक दूसरे के आगे रखे हैं, लेकिन उन पर चाहते हुए भी वे सहमत नहीं हो पाए हैं। पहल करने को कोई तैयार नहीं है। क्योंकि भय और आशंका उन्हें करने नहीं दे रही। जब तक शस्त्रों का समूल उन्मूलन नहीं हो जाता, मानव जाति को भय से मुक्ति नहीं मिलेगी। लेकिन इसमें बाधक भी मानव का पारस्परिक भय ही है। शस्त्रों के उत्पादन और प्रयोग के परिसीमन के प्रयास सफल नहीं हो सकते। क्योंकि शस्त्रों से अभिन्नरूप से जुड़ी है उनकी परंपरा जो रुक नहीं सकती। भगवान महावीर ने यह बात आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व कही थी और आज संसार की वर्तमान दशा इस जीवन्त सत्य की साक्षी है।

भय और हिंसा का अभिन्न सम्बन्ध

भगवान महावीर ने कहा है- हिंसा से भय, भय से हिंसा, यह एक निरन्तर गतिमान अधोगामी चक्र है जिसका कोई अंत नहीं है। जब तक भय है, हिंसा होगी और जब तक हिंसा है, भय होगा। अतीत के भय की स्मृति वर्तमान के भय की चेतना तथा भविष्य के भय की आशंका हिंसा में अनिवार्यतः परिणत होती है।

अप्पेगे हिंसिसु मेत्ति वहंति
अप्पेगे हिंसंति मेत्ति वहंति
अप्पेगे हिंसिस्संतिमेति वहंति।

इसने मुझे मारा है, यह मुझे मार रहा है, यह मुझे मारेगा, यह सोचकर वे एक दूसरे को मारते हैं। यह एक अंतहीन क्रम है। आज सारा विश्व इसकी लपेट में है। इसे रोका नहीं जा सकता।

परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया के दुर्निवार नियमों से बंधा हुआ यह क्रम अप्रतिहत और अपरिहार्य है। इस द्वैध में निःशस्त्री करण सम्भव नहीं और सीमित शस्त्रीकरण कोई अर्थ नहीं रखता। शस्त्र शब्द का प्रयोग महावीर ने विशेष अर्थ में किया है। आदमी शस्त्र बाद में बनाता है, पहले वह शस्त्र बनता है। वह जो बनाता है, वे तो साधनमात्र है, उपादान नहीं। साधन कोई भी हो सकता है। मंदिर का घंटा पूजा करने के समय बजाने के काम आता है, संगीतमय ध्वनि मुखरित करने में बाद्य-यंत्र के रूप में प्रयुक्त होता है। लेकिन कोई पागल पुजारी क्रोध से अंधा होकर उससे किसी का सिर भी फोड़ सकता है। वह अपने आप में शस्त्र नहीं है, शस्त्र बना लिया जाता है। यह बाद की घटना है। उससे पहले कि पुजारी मंदिर के घंटे को शस्त्र बनाता, वह स्वयं शस्त्र बन चुका है। आक्रामकता का भाव उदित होते ही व्यक्ति स्वयं शस्त्र बन जाता है। फिर एक से एक बढ़कर हिंसा के साधन खोज निकालता है। वह साधन आदिमानव की पत्थर की कुल्हाड़ी भी हो सकती है और आज का ''गाइडेड मिसाइल'' भी। दोनों से परिणमित ध्वंश के आयामों में आकाश-पाताल का अन्तर हो सकता है लेकिन यह अंतर बाह्यकारणों के सापेक्ष है। भीतर का आदमी शस्त्र बन चुका है।

भीतर से बनना है अशस्त्र

इसलिए भगवान महावीर केवल यही नहीं कहते कि शस्त्र मत बनाओ या जो बने हुए शस्त्र हैं उन्हें विसर्जित कर दो। उससे कुछ होने वाला नहीं। एक बार सारे शस्त्र शून्य अंतरिक्ष में विसर्जित कर देने पर भी यदि आदमी भीतर से अशस्त्र नहीं बना, तो नए सिरे से और भी अधिक विनाशक शस्त्रों का निर्माण कर डालेगा। अगर भीतर से वह बन चुका है अशस्त्र तो शस्त्रों का होना या न होना उसके लिए कोई मायने ही नहीं रखता। शस्त्र हमारा मन है। मन से वाणी और कर्म तक शस्त्रों की परम्परा बढ़ती रहती है, उसके आयाम फैलते रहते हैं। इन आयामों को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। इनका समूल उन्मूलन ही सम्भव है और वह तभी जबकि भीतर शस्त्र की सत्ता ही न रही हो।

निःशस्त्रीकरण एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न है। महावीर मानते हैं कि समस्या पारिवारिक हो या सामाजिक, राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय उसका उद्‌गम व्यक्ति के भीतर है। वहां से उसकी परिव्याप्ति सर्वत्र होती है। व्यक्ति का जीवन उसके मन की प्रतिच्छाया है। मन है बाहर के पर्यावरण से मानसिक चेतना की क्रिया-प्रतिक्रिया का अनवरत क्रम। यह संवादी (हार्मोनियम) हो सकता है। विसंवादी (डिस-हार्मोनियम) भी हो सकता है। यह संग्रहात्मक

हो सकता है, विग्रहात्मक भी हो सकता है। यह एकात्मक हो सकता है, विभेदात्मक भी हो सकता है। यही शस्त्र है, यही अशस्त्र है। जहां यह अपने पर्यावरण पर आक्रामक हो जाता है, शस्त्र बन जाता है। जहां आक्रामक नहीं होता, अशस्त्र बन जाता है। आक्रामकता को मनोवैज्ञानिक मानव की मूल वृत्ति मानते हैं। डार्विन अपने विकासवाद के सिद्धान्त की आधारशिला संघर्ष और आक्रामकता पर रखते हैं। अस्तित्व के लिए संघर्ष तथा श्रेष्ठ का कायम रहना, सबसे शक्तिशाली का बचा रहना, दुर्बलों का मिट जाना यह विकास की प्रक्रिया का अनिवार्य फलित है, प्रकृति का अनुल्लंघनीय नियम है डार्विन और उनके मतानुयायियों की दृष्टि में। अपने अस्तित्व को बचाने और उसकी सत्ता का निरन्तर विस्तार करने के लिए अनवरत संघर्ष को ही अधिकारी माना है, डार्विन ने विकास के समस्त श्रेय का।

संघर्ष है स्वभाव को पाने का

डार्विन की प्रपत्ति (कांन्सेप्ट) सत्य है, लेकिन खंडित सत्य है। चेतना अनन्त पराक्रममयी है। इसे महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट सभी मानते हैं। जड़ द्रव्य की कारा से विमुक्ति के लिए वह सतत संघर्षरत है, यह सभी स्वीकार करते हैं। अलेक्जेण्डर ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'स्पेस टाइम एण्ड डीटी' में यही प्रतिपादित किया है दिक्‌काल के चौखटे, (स्पेस टाइम) कण्टीन्यूअस में आबद्ध अनन्त रूपों में आत्मा अपनी निर्मल निर्मुक्त चैतन्य सत्ता की प्राप्ति के लिए, जो उसका मूल स्वभाव है, सतत संघर्ष कर रही है। जड़ द्रव्य के आवरणों का निरंतर विरल होते जाना ही चेतना के प्रकाश का प्रखरतर होता है। यह निरन्तर परिवर्द्धमान अन्तः प्रकाशन ही विकास है- 'इवोल्युशन' है। नितान्त अव्यक्त स्थिति से लेकर स्वयं संबुद्ध परमात्मा सत्ता तक, चेतना के सतत संघर्ष की अगणित स्थितियां मिलती हैं। इनमें शक्ति का निरन्तर ऊर्ध्वंगमन होता रहता है। जहां यह अपेक्षित बिन्दु से कम है पराभूत होकर मिट जाता है और पुनः उससे अधिक शक्तिमत्ता के साथ प्रस्फुटित होता है।

लेकिन यह संघर्ष जड़ता से, उसकी सीमाओं से, प्रकृति के अवरोधों से है चाहे वे प्रकृति की जड़ द्रव्यमयी सत्ता में मूर्तिमान हों अथवा भीतर के जीवों की मानसिक जड़ता में प्राणियों का प्रकृति से, वातावरण से, अन्य जीवों से भी जो वातावरण के अंग हैं, संघर्ष चलता रहा है जिसमें दुर्बल की पराजय और विनाश तथा शक्तिशाली की विजय और अस्तित्व सत्ता अन्तर्भूत है। लेकिन यह प्राणियों के विविध वर्गों में होता है- प्रजातियों में। अपनी ही प्रजाति के प्राणी का विनाश कर कोई प्राणी आगे नहीं बढ़ सकता। जीव शास्त्रियों के अनुसार आदमी और चूहा, ये दो ही प्राणी हैं जो अपनी ही प्रजाति के प्राणियों का संहार करते हैं। शेष सारे जीव-जगत में ऐसा कहीं देखने में नहीं आता। एक शेर दूसरे शेर को,

एक सांप दूसरे सांप को नहीं मारता। उनमें समूह चेतना तो नहीं है, लेकिन मूल प्रवृत्ति (इस्टिक्ट) ही उन्हें ऐसा करने से रोकती है। मानव एक सामाजिक प्राणी है। उसमें समूह चेतना है। विकास की संघर्षमयी प्रक्रिया से गुजरकर निरन्तर आगे बढने का कारण यही सामाजिकता है। सहयोग की सामूहिक शक्ति से ही वह प्रकृति के अवरोधों से लड़कर जीतता आया है। सामाजिकता का मूल सूत्र है सहयोग, विग्रह नहीं, 'डिसहार्मनी' नहीं। मानव अपने लिए शस्त्र न बने- परिवार, समाज राष्ट्र और सारे स्तरों पर- यही निःशस्त्रीकरण है, अहिंसा है।

अभय ही सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण

निःशस्त्रीकरण, अर्थात मैं किसी के लिए शस्त्र नहीं बनूं, किसी के साथ संघर्षमय, आक्रामक और विसंवादी नहीं बनूं- यह लोक-जीवन की एक नैतिक अपेक्षा है। उसकी मूल प्रेरणा सामाजिक चेतना है, प्रेम और सहयोग की भावना है। लेकिन आज निःशस्त्रीकरण की मूल प्रेरणा अपने विनाश की आशंका है, भय है, अतः वह शस्त्रों का निर्माण और उपयोग परिसीमित करने तक ही सीमित रह गया है। इस रूप में वह सार्थक एवं सफल नहीं हो सकता। क्योंकि भय का मूल हिंसा है, वैर-वृत्ति है और वह भय से पोषित होकर निरन्तर बढ़ती ही जाती है। उसके सामानान्तर ही बढ़ती रहती है शस्त्रों की परम्परा। भय से तनावयुक्त संतुलन को कुछ समय तक बलात् कायम रखने का प्रयास किया जाता है, जो अन्ततः असफल होता है क्योंकि तनाव एक सीमा पार कर मरणेच्छा में बदल जाता है और उसका बांध टूटने पर अप्रत्याशित विनाश होता है। जब तक हम वैर-वृत्ति से आक्रान्त है, भय होगा। भय-पीड़ित है, तब तक शस्त्रों की परम्परा सीमित और उन्मूलित नहीं होगी। जब तक हम अपने आप में शस्त्र हैं तब तक शस्त्रों की अंधी दौड़ रुक नहीं सकती। जब हम स्वयं में अशस्त्र हो जाते हैं तो निःशस्त्रीकरण स्वतः हो चुकता है- चाहे शस्त्रों का अस्तित्व रहे या न रहे।

क्रोध की आग पर जब क्षमा का नीर बन जाओगे,
अहं-गजराज के पांवों की जंजीर बन जाओगे,
तब नहीं झांकना होगा तुम्हें दायें या बायें
मैं दावे से कहता हूँ तुम महावीर बन जाओगे।

-आचार्यश्री रूपचन्द्र

सत्य क्या है?

○ संघ प्रवर्तिनी साध्वी मंजुलाश्री

सत्य के ज्ञान और सत्य के आचरण द्वारा स्वंय सत्य बन जाना ही जैन दर्शन का उद्देश्य है। सत्य तत्त्वज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है।

तत्त्व क्या है? 'तत्त्वं पारमार्थिकं वस्तु'-पारमार्थिक वस्तु को तत्त्व कहते हैं। तत्त्व नौ हैं- जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष। जीवन चेतनामय असंख्य प्रदेशों का अविभाज्य पिंड है। जिसमें चैतन्य हो, जानने की प्रवृत्ति हो, वह जीव है। जिसमें चैतन्य न हो, जड़ हो, वह अजीव है। शुभ कर्म पुद्गलों का नाम पुण्य है। पुण्य के विपरीत अशुभ कर्म पुद्गलों का नाम पाप है। कर्म ग्रहण करने वाले आत्म-परिणाम आश्रव है और कर्म निरोध करने वाला आत्म-परिणाम संवर हैं। तपस्या और उससे होने वाली आत्मा की आंशिक उज्ज्वलता निर्जरा है। आत्मा के साथ शुभ-अशुभ कर्मों का सम्बन्ध होना बन्ध है। सब कर्मों से छूट जाना, अपने आत्म-स्वरूप में अवस्थित होना मोक्ष है।

जीव और अजीव- ये दो मूल तत्त्व हैं। इन्हें उदाहरण के द्वारा जाना जा सकता है। जीव एक तालाब है। अजीव अतालाब रूप है। पुण्य और पाप तालाब से निकलते हुए पानी के समान हैं। आश्रव तालाब का नाला है। नाले को बांध देना संवर है। उलीचकर नाले से पानी निकालना निर्जरा है। तालाब के अन्दर का पानी बन्ध है। खाली तालाब मोक्ष है।

उमास्वाति ने तत्त्वों की संख्या सात मानी है। पुण्य और पाप का उल्लेख नहीं किया है। संक्षेप दृष्टि से तत्त्व दो ही हैं- जीव और अजीव। क्योंकि विश्व में ऐसा कोई तत्त्व नहीं जो जीव और अजीव- इन दो तत्त्वों में समाविस्ट न हो। तत्त्वों की सात या नौ संख्या उन दो का विस्तार है। पुण्य से लेकर मोक्ष तक के सात तत्त्व स्वतन्त्र नहीं है। नव तत्त्वों में पहला तत्त्व जीव है और अन्तिम मोक्ष। जीव के दो प्रकार बतलाए गए हैं- बद्ध जीव और मुक्त जीव। नव तत्त्वों में अजीव, पुण्य, पाप और बन्ध अजीव हैं। जीव, आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष जीव है।

जैन दर्शन के मौलिक सिद्धान्तों में जैसा स्थान नव तत्त्वों का है वैसा ही स्थान षड्द्रव्यों का है। यानी विश्व का विश्लेषण दो पद्धतियों से किया गया है- पहला नव तत्त्वों के रूप में और दूसरा षड्द्रव्यों के रूप में। इसलिए कहा है- 'षडद्रव्यात्मकोलोकः' अर्थात जहां धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय-ये छः द्रव्य विद्यमान हैं वह लोक है और जहां केवल आकाश ही है वह अलोक है। आकाशास्तिकाय लोक-अलोक दोनों में व्याप्त है। अस्ति का अर्थ है प्रदेश और काय का अर्थ है समूह। प्रदेश समूह को अस्तिकाय कहते हैं।

धर्मास्तिकाय-गति में सहायक होने वाले द्रव्य को धर्मास्तिकाय कहते हैं। जीव और पुद्गलों की गति में उदासीन भाव से अनन्य रूप से सहायक होना धर्मास्तिकाय का कार्य है, जैसे मछलियों की गति में जल सहायक होता है। अधर्मास्तिकाय स्थिति में सहायक होने वाले द्रव्य को अधर्मास्तिकाय कहते हैं। स्थान में वर्तमान जीव और पुद्गलों की स्थिति में उदासीन भाव से अनन्य रूप से सहायक होने के कारण यह अधर्मास्तिकाय कहलाता है। जैसे पथिकों को विश्राम करने के लिए वृक्ष की छाया सहायक होती है, उसी तरह इसका उपयोग है।

आकाशास्तिकाय- अवगाह देने वाले द्रव्य को आकाश कहते हैं। अवगाह का अर्थ है अवकाश या आश्रय। जो सब पदार्थों को आश्रय दे वह आकाशास्तिकाय है।

काल-समय आदि को काल कहते हैं, जो पदार्थों के परिवर्तन का हेतु बनता रहता है।

पुद्गलास्तिकाय-जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श-युक्त होता है वह पुद्गलास्तिकाय है।

जीवास्तिकाय- जो चैतन्य-युक्त होता है, जिसे दुःख-सुख की अनुभूति होती है, वह जीवास्तिकाय है।

पांच अस्तिकाय प्रदेश-युक्त होने के कारण सप्रदेशी हैं। काल के प्रदेश नहीं होता इसलिए वह अप्रदेशी है।

धर्म, अधर्म, आकाश-तीनों एक द्रव्य हैं, अमूर्त हैं व व्यापक हैं। काल, पुद्गल और जीव-तीनों अनेक द्रव्य हैं। संख्या में अनन्त हैं। पुद्गल मूर्त हैं, शेष सब अमूर्त।

धर्म, अधर्म, आकाश और जीव, इन चारों के तीन-तीन भेद होते हैं- स्कन्ध, देश, प्रदेश। काल औपचारिक द्रव्य है इसलिए उसका कोई भेद नहीं होता। पुद्गल के चार भेद हैं-स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु।

अखंड वस्तु को अथवा परमाणुओं के एकीभाव को स्कन्ध कहते हैं। देश-वस्तु के

काल्पनिक कुछ हिस्से को देश कहते हैं। प्रदेश-वस्तु के परमाणु जितने काल्पनिक भाग को प्रदेश कहते हैं। जिसका विभाग न हो सके उसे परमाणु कहते हैं।

द्रव्य जीव नित्य पदार्थ है पर वह कूटस्थ नित्य नहीं, परिमाणी नित्य है। इसका तात्पर्य यह है कि द्रव्य जीव शाश्वत होने पर भी उसमें परिणाम व अवस्थान्तर होते रहते हैं। जैसे स्वर्ण अपने अस्तित्व को रखता हुआ भी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होता है।

एक सोने का कड़ा था। उसका हार बना लिया गया। जिसको हार की जरूरत है वह खुश होगा, जिसको कड़े की जरूरत है वह दुःखी होगा और जिसको केवल सोना चाहिए वह मध्यस्थ रहेगा। सोना एक रूप होते हुए भी पर्याप्त परिवर्तन से भावनाओं में इतना असर आ जाता है।

जीव पदार्थ भी अस्तित्व को कायम रखता हुआ पृथक्-पृथक् अवस्थाओं में उत्पन्न होता है। जीवादि सभी द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त होते हैं। जैसे सोने की चूड़ियों को भंजा कर जब व्यक्ति सोने का हार बनाता है तब हार की उत्पत्ति होती है, चूड़ियों का विनाश होता है और सोना सोने के रूप में स्थिर रहता है। उसी तरह जब जीव युवा होता है तो यौवन की उत्पत्ति होती है, बाल्यकाल समाप्त हो जाता है और जीव जीव-रूप में ही रहता है। यह ध्रौव्य है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य विद्यमान रहता है। ऐसा कोई तत्त्व नहीं जो सदैव एक ही रूप में रहे।

जैन दर्शन के सूक्ष्म सिद्धान्तों की गहराइयों में प्रवेश पाने के लिए भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित नव-तत्त्व, षड्द्रव्य, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य आदि को समझना हमारे लिए अनिवार्य है। जब तक हम जैन दर्शन के इन मौलिक तत्त्वों को पहचानने का प्रयास नहीं करेंगे, तब तक हम यह जानने में असमर्थ रहेंगे कि हम कौन हैं, कहां से आये हैं, कहां जाएंगे। यह जगत् क्या है, हमें क्या करना चाहिए, हमारा आचार-विचार कैसा होना चाहिए, इन सब प्रश्नों का समाधान प्रत्येक व्यक्ति अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को जागृत करके ही प्राप्त कर सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व को जानना चाहता है। परन्तु उसके लिए अपेक्षित है जैन दर्शन के गूढ़तम अध्ययन की। जब तक पाप क्या है, कर्मों का बन्ध कैसे होता है, निर्जरा का क्या कार्य है, मोक्ष में आत्मा कौन से सुखों का अनुभव करती है, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की क्या प्रक्रिया है- इन सब को व्यक्ति अगर नहीं जानेगा, ज्ञपरिज्ञा और प्रत्यख्यान परिज्ञा को नहीं जानेंगे, तब तक जीवन में गति और प्रगति संभव नहीं है।

'हंस अकेला' की 'चेतनामयी' उड़ान

आजकल अक्सर महसूस होता है कि मैंने अपने अतः मानस के 'हंस' को पहचानना शुरू कर दिया है। हमारा भौतिक शरीर भले ही भीड़ में हो लेकिन 'हंस अकेला' ही है शुद्ध, बुद्ध, निर्मल, चेतन! कहीं उस 'हंस' को पहचानने का दावा मेरा कोरा भ्रम तो नहीं? किंतु इतना तो सच है चेतना पर एक दस्तक जरूर होती है और मैं चेतनामयी हो जाती हूँ।

प्रख्यात साहित्यकार, समाजसेवी चित्रा मुद्गल ने सद्य प्रकाशित औपन्यासिक जीवनी 'हंस अकेला' की चेतना को पहचाना और उसे संस्था 'चेतनामयी' से जोड़ कर विशद चर्चा का विषय बना दिया। 27 अक्टूबर के दिन 'चेतनामयी' की मासिक गोष्ठी 'हंस अकेला' को समर्पित थी। चेतनामयी के बारे के चित्रा जी ने मुझे पहले ही फोन पर बता दिया था। कि 'चेतनामयी' के साथ इस महानगर की चैतन्य महिलाओं का जोड़ा गया है। ये प्रबुद्ध, संवेदनशील महिलाएं अपने खर्च का एक हिस्सा 'चेतनामयी' के लिए इकट्ठा करती है और उससे हर महीने एक क्लासिक पुस्तक की प्रतियां खरीदकर उन महिलाओं को दी जाती हैं। उसे पढ़ती है फिर महीने में एक तय कार्यक्रम में वे सब उस पुस्तक विशेष के आमंत्रित रचनाकार के साथ चर्चा करती हैं। इससे पढ़ना एक नियमित क्रम बन जाता है। अगली बार 'हंस अकेला' पर चर्चा होगी। पुस्तकें मंगवाकर 'चेतनामयी' में वितरित की जा चुकी हैं। कार्यक्रम में ये सभी महिलाएं 'हंस अकेला' की रचनाकार के रूप में तुम से और इसकी रचना-प्रक्रिया के बारे में जानना चाहंगी और मुनि रूपचन्द्र जी के समक्ष अपनी तमाम जिज्ञासाएं रखेंगी। यह कार्यक्रम 'चेतनामयी' की सदस्या श्रीमती साधना जैन के दिल्ली में न्यू फ्रेंड्स कालोनी स्थित निवास पर रखने की बात सोची है यह मुनि जी के आश्रम से भी पास पड़ेगा और जैन परिवार होने के कारण आहार-अल्पाहार जैसी समस्या भी नहीं होगी। चित्रा दी के स्वर में हमेशा की तरह अपनत्व की गहराई रचनाकार की संवेदनशील और सहज मधुरता थी।

निश्चित दिन, समय और स्थान यानी कि श्रीमती साधना जैन के निवास पर सबका पहुंचने का सिलसिला शुरू हुआ। साधना जी के पति निर्मल जी बड़े श्रद्धा-भाव से गुरूदेव को लेने आश्रम पहुंचे। घुटनों के कठिन और कष्टदायी ऑपरेशन के ठीक एक महीने बाद पहली बार गुरूदेव जी आश्रम से बाहर निकले। चलने के लिए 'सपोर्ट' का सहारा लेना पड़ रहा था।

धीरे-धीरे पूरा हॉल भर गया। सभी महिलाओं के हाथ में 'हंस अकेला' पुस्तक की प्रति थी और चेहरों पर उल्लास और चित्त में जिज्ञासा। 'चेतनामयी' की प्रार्थना हमको मन

की शक्ति देना...' के साथ कार्यक्रम शुरू हुआ। चित्रा जी ने अपने धीर-गंभीर, भाव-विभोर स्वर में भूमिका बांधते हुए कहा- पिछले साढ़े तीन साल में विनीता जब भी फोन पर बात करती, इस पुस्तक की चर्चा करती। मैं इसके संवादों में पुस्तक को सुन रही थी। मैं पुस्तक की उन इबारतों को पढ़ रही थी, जो इसके संवादों से जुड़कर मेरे पास पहुंच रही थी। एक दिन इसने फोन पर मुझे मुनि जी की कविता सुनाई। कहने का अर्थ यह कि विनीता अपनी निजी जिंदगी और पत्रकारिता के तमाम पेचों से निकल कर पुस्तक में रमी हुई थी। यह जैसे पूरे आकाश और पूरी धरती को अपनी अंजुलि में समेट रही हो, भले ही वह बित्ते भर धरती हो। पुस्तक को लिखते हुए जैसे यह धीरे-धीरे आनंद की सीढ़ियां चढ़ रही थी। उसके बाद जब किताब पूरी हो गई तो इसकी खुशी का पारावार नहीं था। यह फोन पर अक्सर कहती थी दीदी एक बार आश्रम चलिए। मैं मुनि जी के आश्रम नहीं जा सकी लेकिन विनीता की बातों से महसूस होता कि आश्रम ही क्या जोधपुर, जयपुर, नालंदा, राजगीर, नेपाल जहाँ-तहाँ मुनि जी गये वह सब मेरे पास खुद चले आये। इसे लिखने में यह पूरी तरह डूब चुकी थी और यह डूबना कहीं न कहीं हाथ-पैर मारने वाली चीज होती है। पुस्तक को पूरा करने के बाद सजाने-संवारने की प्रक्रिया बहुत से लोग नकली पते काढ कर खूबसूरती बढ़ाते हैं, लेकिन विनीता का लक्ष्य असली पत्तों के साथ उस फूल को लाना था। फिर मेरे पास 'हंस अकेला' पुस्तक लायी इस आग्रह के साथ कि मैं इसकी भूमिका लिखूं। मुझे लगा कि मैं इस लायक नहीं हूँ। रात को जब मैं लिखने बैठती तो लगता कि मैं उस रोशनी के दायरे में सिमट रही हूँ। और फिर एक दिन मुनि जी के रूप में वह रोशनी साक्षात मेरे घर पधारी। उस अनुभव का वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। सच तो यह है कि आप रोशनी से मीलों दूर भी हों तो रोशनी का अहसास होने लगता है। हम देखते हैं वहाँ आसमान कुछ उजला सा लग रहा है तो रोशनी जरूर कहीं होगी। और मैं सचमुच रोशनी के सामने थी। 'हंस अकेला' वैसी ही रोशनी है। बहुत अद्भुत पुस्तक है। एक क्लासिक जैसी इस पुस्तक को पढ़ते हुए आप एक अनूठे जीवन को जान पाते हैं। यह पुस्तक आपको अपने ऊपर विजय करना, बताती है। दृढ़-इच्छा शक्ति की मिसाल पेश करती है कि कैसे एक बच्चा अपने आपको नियंत्रित करता है। फिर दीक्षा के मार्ग पर चलता है। ऐसी अच्छी पुस्तक की रचना-प्रक्रिया के बारे में लेखिका प्रोफेसर विनीता से जानेंगे कि आखिर उन्होंने क्यो यह विषय चुना?

अब बारी मेरी थी। मैं असमंजस में थी कि क्या कहूँ? तभी गुरूदेव जी की वाणी गूँजी, 'जो प्रश्न चित्रा जी ने विनीता जी से किया वह प्रश्न मेरे मन का भी है कि इनका

मन क्यों हुआ? मुझे कभी समझ नहीं आया। मैंने कभी सोचा नहीं कि मुझमें कुछ ऐसा है, जिस पर लिखा जाए। उन्होंने क्यों मुझ पर लिखने की बात सोची?

दोनों तरफ से एक ही प्रश्न मेरे सामने था। मैंने इसकी पृष्ठभूमि बतानी शुरू की। पृष्ठभूमि में 2007 में मेरा साध्वी मंजुलाश्री जी की जीवनी लिखने के लिए आश्रम में निरंतर आना-जाना। एक पेशेवर लेखक की तरह शुरू-शुरू में मेरा जाना आश्रम में हुआ। धीरे-धीरे जुड़ाव महसूस होने लगा पूरे आश्रमवासियों से विशेष रूप से मुनि रूपचन्द्र जी, साध्वी मंजुलाश्री जी से और बालक सौरभ और नन्ही बच्ची मुक्ति से। इस जुड़ाव की प्रक्रिया के रूप में 'ओजस्विनी' शीर्षक पुस्तक के रूप में साध्वी जी की जीवनी छप कर सामने आयी। लोगों ने पढ़ी तो उनकी प्रतिक्रिया मेरे लिए बहुत उत्साहवर्धक थी। देश भर से लोगों की चिट्ठियां और फोन आए 'ओजस्विनी' के प्रभावी लेखन के लिए बधाई के साथ उनमें आग्रह था कि मैं गुरूदेव जी पर भी कुछ लिखूँ। और सच पूछो तो मैं उस समय गुरूदेव जी और आश्रम से भावत्मक रूप से गहरी जुड़ चुकी थी। और मुझे अपनी जिंदगी के अंधेरों में गुरूदेव जी की वाणी में रोशनी की कोर जैसी दिखाई देने लगी थी। उस घोर अंधेरे जीवन में गुरूदेव मुझे प्रकाश पुंज की तरह लगने लगे। उनकी कविताएं, उनके विचार, उनका अध्ययन और कर्म के रूप में मानव मंदिर की अवधारणा कुल मिला कर मेरी जीवन-दृष्टि को बदलने लगी थीं। अपने पत्रकारीय जीवन में हजारों लागों से मिलने के बाद पहली बार मुझे मुनि रूपचन्द्र जी में सच्चा संत दिखाई दिया। तो मुनि रूपचन्द्र जी के व्यक्तित्व का प्रकाश और पाठकों का दबाव दोनों ही कहीं 'हंस अकेला' की भूमिका में रहे। मैं मानसिक और नैतिक दबाव महसूस करने लगी थी कि ऐसे संत पुरुष का जीवन लोगों के सामने अवश्य आना चाहिए तो मन बनाया लिखने का। लेकिन मैं साधारण जीवनी की तरह सपाट नहीं लिखना चाहती थी। महीनों के मंथन के बाद तय किया कि मैं इसे उपन्यास की कथात्मक शैली में लिखूंगी और इस उपन्यास का नायक होगा बालक रूपा जो बाद में दीक्षा लेकर संत जीवन के मार्ग पर मुनि रूपचन्द्र बन कर निकल पड़ा। इस शैली में लिखने की पृष्ठभूमि में मेरे मानस में कहीं न कहीं नरेन्द्र कोहली की उपन्यास श्रृंखला 'तोड़ो कारा तोड़ो' रही, जो स्वामी विवेकानंद के जीवन पर आधारित है। लिखने के लिए मुनि रूपचन्द्र जी के जीवन में झाँकना, उनको पढ़ना बहुत जरूरी था उनके संपूर्ण अतीत और वर्तमान के साथ। और यह इतना आसान नहीं था। क्योंकि जिस व्यक्ति के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं, उससे आप बहुत कुरेद-कुरेद कर नहीं पूछ सकते। श्रद्धेय और श्रद्धालु के बीच एक निश्चित दूरी हमेशा रहती है। उनको जानना-समझना आसान नहीं था किंतु अनेक लंबे

वार्तालापों में अंतर्मुखी गुरूदेव जी के बचपन से लेकर अब तक की यात्रा के तमाम पड़ाव सामने आते गये। मैंने उनके जीवन से जुड़े अनेक स्थानों पर भ्रमण किया। इस क्रम में सबसे पहला था उनका जन्मस्थान सरदार शहर। कुछ जगह अकेले गई और कुछ जगह स्वयं गुरूदेव जी के साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पावापुरी, राजगीर, नालंदा, कन्याकुमारी आदि। इन यात्राओं के दौरान मुझे मुनि रूपचन्द्र जी को और अधिक समझने, उनकी भावभूमि पर उतरने का अवसर मिला। इन स्थानों पर जाना इसलिए जरूरी था क्योंकि मौजूद स्थानों को कल्पना से नहीं गढ़ा जा सकता। वर्णनों में जीवंतता लोने के लिए यह जरूरी था। भूमिका बन चुकी थी। 2008 में गुरूपूर्णिमा के दिन इसे लिखना शुरू किया और साढ़े तीन साल लगे इसे लिखने में। इसमें वर्णित सभी घटनाएं सत्य हैं लेकिन उनकी प्रस्तुति कल्पना-मिश्रित है। इस उपन्यास का समापन कन्याकुमारी में है। समापन दृश्य कन्याकुमारी में होगा, यह बात 2010 में तय हो गई थी, जब गुरूदेव जी आश्रम के बच्चों के साथ कन्याकुमारी गए थे और वहाँ से उनका फोन आया था। उसके बाद 2011 में फिर गुरूदेव जी के साथ कन्याकुमारी जाने का कार्यक्रम बना और इस तरह अंतिम अंश की शुरूआत कन्याकुमारी में ही लिखना शुरू किया। लेकिन यह कन्याकुमारी वाला प्रसंग तीन बार लिखा गया चित्रा जी के सुझाव के अनुसार। पहली बार चित्रा जी ने कहा, वह बात नहीं आयी जो एक संत पुरुष से जुड़े। दोबारा लिखा, चित्रा जी को दिखाया। वे फिर बोली- 'नहीं, विनीता अभी भी कमी है। तुम उस जगह तक नहीं पहुँच सकी हो और मैंने बड़े धैर्य से तीसरी बार लिखा तब कहीं जा कर उन्होंने संतोष व्यक्त किया। चित्रा जी ने अपना अनमोल समय निकलकर सुघड़ता की ओर मेरा मार्ग प्रशस्त किया। जीवन की तमाम व्यस्तताओं में दिन में लिखना कभी संभव नहीं हो पाता था, इसलिए भोर की समाधि वेला में 3 बजे से 6 बजे तक ही लिख। और सच बताऊँ कन्याकुमारी वाले प्रसंग को छोड़कर पूरा उपन्यास सिंगल ड्राफ्ट में लिखा गया। चूँकि गुरूदेव जी ने जीवन में देश-विदेश का भ्रमण किया, लेकिन सब जगह मेरे लिए जाना संभव नहीं था उनके वर्णन में जीवंतता आये इसके लिए मैंने अपने पत्रकारीय कौशल अध्ययन और आधुनिक तकनीक यानी की इंटरनेट पर विडियोज का सहारा लिया। न्यूयार्क, न्याग्रा फॉल्स, सिद्धाचलम, कैलाश मानसरोवर, तिब्बत ल्हासा के वर्णन ऐसे ही है।''

इसी बीच एक सदस्या बोली- कि ''दो-तीन साल पहले मैं ल्यासा गई थी। मेरी आँखों के सामने पूरा ल्हासा घूमने लगा। इतना जीवंत वर्णन है।''

इसे लिखने के पीछे मेरे मानस में न कोई आर्थिक लाभ की चाह थी और न कोई

दूसरी अपेक्षा। डूब कर लिखना मेरा लक्ष्य था और अगस्त 2011 में लिखने का लक्ष्य पूरा हुआ। मैं 'हंस अकेला' के साथ आनंद-सरोवर में तैरने लगी थी।

सभागार में उपस्थित सभी जिज्ञासु और श्रद्धानत नेत्र गुरूदेव जी ओर थे। सब उन्हें सुनना चाहते थे। उन्होंने भी शुरूआत 'हंस अकेला' पुस्तक से की और बताया कि वे नहीं चाहते थे कि उन पर कुछ लिखा जाय क्योंकि उन्हें नहीं लगता कि उनके जीवन में कुछ भी ऐसा विशेष है, जिसे समाज के सामने लाया जाये। वे बोले, मैंने कोशिश की कि विनीता जी मुझ पर न लिखें। लेकिन जितनी कोशिश मैंने निरुत्साहित करने के लिए की उतने ही वेग से वे इस दिशा में बढ़ती चली गई। ये अक्सर कहती थीं गुरूदेव जी मेरे भीतर एक प्रेरणा जन्म ले रही है मैं उसका अक्षरांकन करना चाहती हूँ। वैदिक चिंतन ने कहा, जो कुछ है वह ईश्वराधीन है, नियंता के अधीन है। नियंता नियम के अनुसार सृष्टि का संचालन करता है। जैन चिंतन ने कहा जो कुछ है, वह नियम के अधीन है। नियंता और नियम में कितना अंतर है, कहना बड़ा मुश्किल है। लेकिन जीवन का अनुभव यह कहता है कि यह सब है किसी के अधीन। उसे नियम के अधीन कहें, या नियंता के अधीन, अथवा कर्म के अधीन लेकिन है किसी के अधीन। मुझे खूब याद है कि तेरह बरस की उम्र तक तो मैं गलियों में पतंगों के पीछे ही दौड़ता था। फिर मन बदल गया और मैंने दीक्षा ली। यह सब किसी के अधीन ही तो है। 'हंस अकेला' का लिखा जाना और छपना उसी नियंता की इच्छा का परिणाम है। मनुष्य के बनाये हुए नियम ज्यादा नहीं चलते, जैसे कि बचपन में मुझे पतंग न उड़ाने का नियम दिलाया गया, वह नियम टूटना ही था। क्योंकि जबर्दस्ती दिलाया गया था। बात यूँ हुई कि पिता जी मेरे पतंग उड़ाने से बहुत नाराज रहते थे, इसलिए उन्होंने मुनि सोहनलाल जी से मुझे पतंग न उड़ाने का नियम दिलाया, लेकिन मेरा मन भटकता। मेरा मित्र दुलीचंद मुझे बुलाने आता और मैं उसे पतंग उड़ाते हुए देखता। वह कहता, पतंग न उड़ाने का नियम दिलाया है, चरखी पकड़ने का तो नहीं। एक दिन वो छत पर पतंग उड़ा रहा था, पास में खड़ा था। तभी उसके घर से आवाज देकर उसे बुला लिया गया। वह चरखी मेरे हाथ में थमाकर घर में चला गया। अब चरखी मेरे हाथ में थी, पतंग आसमान में उड़ रही थी। बस नियम टूट गया। पिता जी को पता चला, डाँट पड़ी। तब मैंने कहा, नियम जबरन थोपे नहीं जाते, वह मन से स्वीकारे जाते है। बस इस घटना से मेरे भीतर एकदम बदलाव आया। मैंने घर में कहा कि मैं दीक्षा लूंगा। और दीक्षा लेते ही मेरे भीतर एकदम बदलाव आ गया। जहाँ पहले मैं देर तक सोता रहता था, इस बात पर बड़े भाईसाहब से नोंकझोंक भी हो जाती थी, मुनि जीवन में आने के बाद वही चार बजे

उठ जाना, अध्ययन करना, मंत्र श्लोक वाचन सब दिनचर्या बन गए। यह सब परिवर्तन कैसे हुआ, मेरी समझ से परे है। उस समय की कठिन जैन मुनि चर्या का पालन जैसे भीतर कोई लौ जल रही हो। यह लौ किसने लगाई, मुझे पता नहीं। और एक परम्परा विशेष में दीक्षा ली लेकिन कभी परम्परा से बँधा नहीं। और वह भीतर का भाव मेरी कविताओं में सामने आया। जैसे इस कविता की पंक्तियों में है-

खुले आकाश को जिया है मैंने
खुले विश्वास को जिया है मैंने
परम्पराओं से ऊपर उठकर
खुले संन्यास को जिया है मैंने।

अपनी कविताओं के बारे में एक बात कहना चाहता हूँ कि ये कविताएं मैंने नहीं लिखी, जैसे किसी ने लिखवाई हों। जैसे मानसून पूरे वेग से उमड़-घुमड़ कर आता है और जब तक बादल बरस नहीं जाते जब तक आकाश साफ नहीं होता। मेरी कविताएं भी ऐसे ही लिखी गईं। एक-एक दिन में तीन-तीन कविताएं/गजलें लिखी गईं।

बहुत बार यूँ खुद को खुद पर ही विश्वास नहीं होता है
कुछ होता है भीतर-भीतर, पर अहसास नहीं होता है।

सागर सी गहरी आँखों में आसमान सा उतरे कोई
पर ऐसी घटनाओं का कोई इतिहास नहीं होता है।

रास आ गया जिस तोते को सोने के पिंजरे का जीवन
उन पाँखों के लिए कहीं कोई आकाश नहीं होता है।

साथ-साथ खाते सोते हैं एक डाल पर दोनों पंछी
पर अचरज अब तक भी दोनों का सहवास नहीं होता है।

तन से तन छू जाये कोई, आँखों ही आँखों में झाँके
इतना पास-पास दिखता जो फिर भी पास नहीं होता है।

परदों के ऊपर हैं परदे, बाहर बंद पड़े दरवाजे
दस्तक देती सदा रौशनी पर आभास नहीं होता है।

तरह-तरह के किस्से चलते सदा कुँवारी ही सांसों के
परम मिलन से ऊपर कोई भी संन्यास नहीं होता है।

यह सब किसने लिखवाया? कह नहीं सकता लेकिन इतना जरूर है कि एक जिज्ञासा मन में सदा रही कि यह जीवन क्या है? इस जीवन को समझने की जिज्ञासा में मैं हर जगह पहुँचा, न पंथ देखा, न संप्रदाय। आज जहाँ तक पहुँचा, वहाँ मुझे सुकरात की बात याद आती है। यूनान की देवी ने कहा था कि आज अगर कोई सबसे ज्ञानी व्यक्ति है तो वह है सुकरात। सुकरात ने कहा कि वो कोई और होगा, मैं तो हूँ नहीं। मैं अपने अज्ञान को जानता हूँ। और यूनान की देवी ने कहा कि जो अपने अज्ञान को जानता है, वही सबसे बड़ा ज्ञानी है। बस यूँ ही चलता रहा, स्वाध्याय करते हुए। उस स्वाध्याय में अगर कोई बाधा आई तो मैं उसे दर किनार करता गया।'

हॉल में उपस्थित अभिभूत महिलाओं ने गुरूदेव जी से और कविता सुनाने का आग्रह किया। सब भावविभोर थे, मंत्र-मुग्ध से। गुरूदेव जी ने आग्रह टाला नहीं और अपनी उदास कबूतर कविता सुनाई, वही कविता जो मुझे बहुत पसंद है-

"झरोखे में बैठा उदास कबूतर..."

मुझे लगता है जीवन अनंत है आकाश की तरह। हमारा जन्म रेगिस्तान में हुआ। जैसे हम रेतीले टीलों में जाते और दूर से देख कर कहते, देखो वहाँ धरती और आकाश मिलते हैं। और हम वहाँ तक दौड़े चले जाते। वहाँ पहुँच कर पता लगता कि ऐसा कुछ भी नहीं है। क्षितिज और आगे सरक जाता। आज हमारी स्थिति ठीक वैसे ही है चलते जा रहे हैं। क्षितिज पर क्षितिज खुलते जरूर जा रहे हैं पर यह जरूर समझ में आ गया है कि कोई क्षितिज मिलने वाला नहीं है। इस पर मैंने एक गजल 2002 में लिखी थी जो ट्रिब्यून में छपी थी। पिछले दिनों हमारे मित्र प्रो. फूलचन्द मानव उसकी कटिंग लेकर आए थे।

उतना सच है, जितना भ्रम है
या सच अपने में विभ्रम है।
शाश्वत सच सा लगता है जो
शायद यह भ्रम का ही क्रम है
सदा रौशनी आती-जाती
आगे-पीछे तम ही तम है
एक आँख खुशियों के आँसू
आँख दूसरी गम से नम है
सच ही होगा तेरा कहना
उसकी बातों में भी दम है।

ये जीवन के अनुभव है। और सबसे बड़ी खुशी की बात यह है कि 'हंस अकेला' में जो कुछ आया है, वह लगभग वही है, जिन भावनाओं के जगत पर मैंने जीवन जिया है और इसका सारा श्रेय विनीता जी को और इससे आगे का श्रेय आप सभी को। सच बताऊं मैंने जीवन में कभी आग्रह नहीं पाले। क्योंकि जितने आग्रह हैं उतने ही पंथ और संप्रदाय हैं दरअसल ये पंथ और संप्रदाय अपने-अपने आग्रह ही हैं।

मैंने कहीं लिखा भी है-

रौशनी की मशालें वो हथियाये हुए हैं
जिनके चारों ओर अंधेरे छाये हुए हैं
छुपाये हुए हैं जो अपने असली चेहरों को
वो ही सिर पर आसमान उठाये हुए हैं।

मैंने जो लिखा, वो बेधड़क लिखा। हालांकि जानता था कि उसकी कीमत चुकानी पड़ेगी और चुकायी भी।'

तभी सामने बैठी करुणा शर्मा बोलीं, वो जयपुर वाले सम्मेलन में वैसा ही हुआ। असल में सभी महिलाएं 'हंस अकेला' पढ़कर आयी थीं। गुरुदेव जी जिन-जिन घटनाओं का जिक्र कर रहे थे, वे पन्ना खोलकर देख लेतीं। लग रहा था सब पुस्तक पढ़कर नहीं घोंटकर पी आयी हों।

गुरूदेव जी बोले, हाँ जयपुर में भी और उसके बाद भी। कई बार महसूस हुआ और उसे मैंने लिखा भी-

"घुटता है अब श्वास कि खिड़की खोल दो तुम
रोता है विश्वास कि खिड़की खोल दो तुम
नहीं चाहिए हमें किसी भी प्रभु के दर्शन
बंद करो बकवास कि खिड़की खोल दो तुम।"

"चित्रा जी समेत सभी के मुँह से एक स्वर में निकला-बहुत...खूब...बहुत खूब।" और फिर तालियां। गुरूदेव जी ने कहा कि जयपुर में ही नहीं, ये तो रोज के किस्से हैं। और आप जानते हैं कि भीड़ उन्हीं के साथ होती है।

एक दर्द भीतर ही भीतर कसक-कसक उठ आता है
नाम रौशनी का लेकर अंधियारा लाभ उठाता है।
पुण्य जयंती समारोह की चमक-दमक में जन नेता
कोई दाम कमाता है और कोई नाम कमाता है।

बस मुझे तो यही कहना है। आप सबको मेरे जीवन में कुछ अच्छा लगा इसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ

अब पाठकों के प्रश्नों का सिलसिला शुरू हुआ। करुणा जी का ही प्रश्न था। इस पुस्तक में विपश्यना साधना का जिक्र है। हालांकि विनीता जी की खूबी रही कि उन्हें जहाँ लगा कि कोई बात पाठक को समझने में दिक्कत हो सकती है, उन्होंने समझाकर लिखा है। लेकिन विपश्यना ध्यान के बारे में जानना चाहती हूँ।

जिज्ञासा शांत करते हुए गुरूदेव जी बोले- 'विपश्यना ध्यान एक बहुत ही शुद्ध ध्यान पद्धति है। मूलतः बौद्ध परंपरा हों या उपनिषदों के रचयिता ऋषि हों, वे जिस ऊँचाई पर बोलते हैं, हम उस ऊँचाई तक तभी पहुँच पायेंगे, जब उस गहराई को समझने की कोशिश करेंगे। विपश्यना अपने आप में बहुत गहरी पद्धति है। ध्यान के दो प्रकार होते हैं। एक है जिसे एकाग्रता कहते हैं, लेकिन वह ध्यान नहीं है, क्योंकि वहाँ मन है। विपश्यना एक तरह से वही है, जिसकी चर्चा कृष्णमूर्ति जी ने 'चॉयसलैस अवेमरनेस' से की है। उसमें यही है कि आत्मा है या नहीं, परमात्मा है या नहीं। ये सब कल्पनाएं हैं। उसे लेकर बैठेंगे तो हम वही पायेंगे। क्योंकि हम पहले से ही कंडीशंड हो गये हैं। तो सभी कडीशंस से हटकर पहले विपश्यना में श्वास के आने-जाने से शुरू करते हैं। वह द्रष्टा भाव की साधना। तो वे श्वास से शुरू करते हैं और फिर शरीर के सूक्ष्मतम स्पंदनों तक द्रष्टा बनने का अभ्यास होता है। उसी का नाम विपश्यना है। मैं भी इसके ध्यान-शिविर में गया। उसमें कुछ बोल नहीं सकते, लिख नहीं सकते। सातवें दिन मन में कुछ उभरा और मैंने लिख दिया। नहीं लिखता तो ध्यान में नहीं बैठ पाता।

यों तो जीवन के हर क्रम में नियम प्रमुख होता है,
किंतु कभी ऐसा भी अवसर जब सम्मुख होता है
प्रेम पगी पलकों में ज्यार भावना का उमड़ा हो
उस पल नियम टूटने का भी अपना सुख होता है।

इन पंक्तियों को लेकर बहुत विरोध हुआ। हर वह ध्यान पद्धति जो आपको द्रष्टा-भाव तक ले जाए वह सही है।

''पनघट तक आकर जो वापस लौट गया है
मनघट तक आकर जो वापस लौट गया है
नहीं मिलेंगे उसको अपने प्रिय के दर्शन
घूँघट तक आकर जो वापस लौट गया है।''

मुझे बहुत खुशी है कि महान साहित्यकार चित्रा जी और आप सबको मेरा लेखन पसंद आया। अभी तमाम जिज्ञासाएं बाकी थी। श्रीमती मंजु मित्तल भावविभोर हो बोलने लगीं- ''पिछली गोष्ठी में हमें 'हंस अकेला' पुस्तक दी गई थी। उसमें पढ़ा कि यह उपन्यास है। किसी मुनि जी के बारे में यह उपन्यास लिखा गया है, पढ़कर अटपटा लगा। इस किताब को पढ़ना शुरू किया। पहले आपकी लिखी प्रस्तावना पढ़ी। फिर लेखिका ने शुरू कर दिया एक दम कहानी की तरह। पहले तो मैंने उसे कहानी की तरह पढ़ना शुरू किया, लेकिन धीरे-धीरे उसे बुनने लगी। ध्यान-मनन शुरू कर दिया। आपके पाँव में जब छाले पड़े तो उसने मुझे भी दर्द दिया। आपके जीवन की जितनी घटनाएं पढ़ी, उनमें मैं एकदम रमती चली गई। पता चला कि जैन धर्म क्या होता है? मैं असल में जैन धर्म को बहुत संकुचित समझती थी। मैं वैदिक परंपरा में पली बढ़ी हूँ। मेरे पर ओम् और गायत्रीमंत्र का प्रभाव है। अभी आपने विपश्यना की बात कही, मैंने भी विपश्यना के छह-सात शिविर किये हैं। जब इस पुस्तक में पढ़ा तो जाना कि आपने जीवन के सभी अनुभव लिये हैं। मैं जितना-जितना पढ़ती गई, लगा मैं आपसे बातचीत कर रही हूँ, आप में मग्न हूँ। मैंने कभी लेखिका के बारे में नहीं सोचा, न ही कोई भाव आया। जब मैंने किताब खत्म की तो अवाक् रह गई। कि अरे! यह सब तो लेखिका ने लिखा है। लेखिका ने आपके जीवन पर, आपके विचारों पर उपन्यास लिखा है, तो इन्होंने कितना अध्ययन-मनन किया होगा। ये कितनी सात्विक होंगी, साध्वी होंगी यह मैंने किताब खत्म करने के बाद जाना। लेखिका के बारे में मैंने सबसे बाद में पढ़ा बाद में, जब भी मन होता था मैं आपका छोटा सा फोटो देखती थी। मेरा एक छोटा-सा प्रश्न है आपसे कि मुझे यह जानकर बहुत परेशानी हुई कि सब संतों, महात्माओं को इतना कष्ट उठाने के बावजूद वह सब देखना, झेलना पड़ता है जो आपने झेला और अपनी कविताओं में वर्णित भी किया है कि समाज में क्या हो रहा है, या संत-समुदाय में भी क्या हो रहा है? जब जैनियों के बारे में पढ़ा कि कोई स्थानक वासी है, कोई दिगंबर है, कोई श्वेतांबर है, कोई तेरापंथी है। मैं महावीर को बहुत उच्चकोटि का संत-महात्मा मानती हूँ। पर आपके बारे में पढ़कर मुझे इतना अच्छा लगा कि आपसे मिलने की उत्कट अभिलाषा जाग उठी। आपसे मैं बहुत सारे अटपटे प्रश्न पूछने वाली थी, लेकिन पुस्तक पढ़ने के बाद समाधान मिल गया। क्योंकि पुस्तक में मंजुबाई जी के जो प्रश्न हैं अधिकतर वे मेरे भी हैं। मैं आपके पाँव देखना चाहती हूँ। आपने इतनी नंगे पाँव चलकर यात्राएं कीं। आपके पाँव में छाले पड़े होंगे। आपने कितने कष्ट सहे होंगे। लेखिका ने इसका इतना जीवंत वर्णन किया है कि मुझे लगने लगा कि मेरे पाँव में भी छाले पड़ गये हैं।' गुरूदेव

जी बोले एक-दो बात और कहना चाहता हूँ। कि में कभी किसी संस्थागत धर्म का समर्थन नहीं करता। क्योंकि आत्मा की यात्रा सब की अपनी-अपनी होती है। परपरा-गत धर्म में ज्योति-पुरुष तो कोई एक होता है। बाद में तो गद्दियां चलती हैं। मुझे स्वाभिनारायण संप्रदाय के ज्योति-पुरुष स्वामी विशुद्धानंद जी की बात याद आती है। एक बार वो एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहे थे। सामने से एक व्यक्ति बहुत तेजी से भागा हुआ आ रहा था। उसना नाम था हठी सिंह। वह शरीर से बहुत ताकतवर था, लेकिन बुद्धि से शून्य। ऐसे लोगों को सब मनोरंजन का पात्र समझते हैं। तो हठी सिंह सुबह-सुबह बाहर खड़ा था, सूरज उसके पीछे था। दोस्तों ने कहा- अरे! हठीसिंह तू कहता है मैं बड़ा ताकतवर हूँ। मैं किसी को भी पीछे छोड़ सकता हूँ। मेरे से आगे कोई नहीं जा सकता। तो तू इस परछाई को पीछे छोड़कर दिखा तो मानूं तू ताकतवर है। बस यह चुनौती सामने आते ही वह दौड़ने लगा। लेकिन वह जितना दौड़ता गया परछाई उससे आगे दौड़ती गई। सामने मिले स्वामी विशुद्धानंद। उसने प्रणाम किया। स्वामी जी ने पूछा, अरे तू पसीना-पसीना हो रहा है। कहाँ भागा जा रहा है? तो उसने कहा स्वामी जी क्या बताऊँ मैं तो दोस्तों के चक्कर में आ गया। उन्होंने कहा कि इस परछाई को पीछे छोड़ सके तो जानें और यह तो ऐसी पागल कि आगे ही आगे भागी जा रही है। स्वामी जी ने कहा- इसका इंतजाम तो हम कर देंगे। उन्होंने उसका मुँह सूरज की ओर फेर दिया और कहा अब चल। तो परछाई उसके पीछे हो गई। उसने कहा- 'स्वामी जी आपने तो एक सेकंड में काम कर दिया। स्वामी विशुद्धानंद जी बोले 'संत का काम यही होता है।' लेकिन ध्यान देने की बात यह है जैसे छाया आगे होती है आप पीछे, उसी तरह माया आगे, आप पीछे। सब ऐसे ही दौड़े जा रहे हैं। आखिर में परेशान होकर संत के पास जाते हैं। संत क्या करते हैं आपका मुँह सूरज यानी प्रभु की और कर देते हैं, जिससे माया अपने आप पीछे हो जाती है। लेकिन आजकल संत आपका मुँह सूरज की न मोड़कर अपनी ओर मोड़ लेते हैं। बस फिर उनके पीछे दौड़ते रहें।'

एक और प्रश्न गुरुदेव जी की तरफ था। आपको 'हंस अकेला' के माध्यम से जाना। आपकी कविताएं पढीं। यह भी जाना कि आपने बहुत छोटी उम्र में दीक्षा ले ली थी। आपकी विधिवत् पढ़ाई नहीं हो पायी। फिर इतना अध्ययन, इतना उपयुक्त शब्दों का चयन, उन्हें लय-ताल में बैठाना, यह सब कैसे संभव हो पाया? यह बहुत आश्चर्य जनक लगता है।'

गुरूदेव ने बताया कि अपनी पदयात्राओं के दौरान या चातुर्मास प्रवास के दौरान जब भी मौका मिला, वे स्वाध्याय करते रहे और जब जहाँ जिससे कुछ सीखने या पढ़ने का अवसर मिला, वे पढ़ते रहे। अध्ययन खूब किया, लेकिन डिग्रियों के लिए नहीं। आगे कहा-

'देखिये, जितने भी दैवीय व्यक्तित्व हैं, शिव, राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध हमने अपनी-अपनी समझ के अनुसार उनके साथ मान्यताएं खड़ी कर दी हैं। लेकिन हम सब जानते हैं कि वह जो दिव्यता है, वहाँ ये कोई भी आकार, या कोई भी मान्यताएं नहीं है। और मुश्किल यह है कि हम इन मान्यताओं और आकारों से ऊपर नहीं उठ पाते हैं। और उनके पीछे दौड़े जाते हैं। सच तो यह है धर्म का अर्थ तो अपनी दृष्टि को बदलना है-

नजर को बदलिये, नजारे बदल जायेंगे
सोच को बदलिये, सितारे बदल जायेंगे।
किश्तियां बदलने की कोई जरूरत नहीं
धार को बदलिये किनारे बदल जायेगे।

मैंने कहा कि जितनी भी ये संस्थागत धर्म हैं, भीड़ को उसमें आसानियाँ लगती हैं। और फिर जो सबका बन जाता है, वह फिर किसी का नहीं होता। इसलिए आप अगर पंथ का नाम लेंगे तो एक भीड़ खड़ी हो जाएगी। किंतु फिर हाथ में माटी का दीया रह जाएगा, रोशनी छूट जाएगी। मैंने एक बार पावापुरी में लिखा था, आपने इस पुस्तक में पढ़ा भी होगा-

'स्थानक मिले, मंदिर मिले
महावीर नहीं मिले
अहं भरे कितने आडम्बर मिले
महावीर नहीं मिले
बहुत-बहुत खोजा हमने
तीर्थंकर महावीर को
श्वेताम्बर मिले, दिगम्बर मिले
महावीर नहीं मिले।'

एक साथ कई स्वर हॉल में गूँज- 'यह पुस्तक पढ़कर तो बहुत श्रद्धा हुई थी। आज आपसे मिल कर तो जैसे हम धन्य हो गये।'

एक और स्वर, 'आपने गीता के युद्ध के पहलू को जिस तरह भगवान महावीर की अहिंसा से जोड़ा। वह अद्भुत है। आपने दो पद्धतियों को आपस में बहुत आसानी से जोड़ दिया।'

गुरूदेव की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि। उत्तर में गुरूदेव बोले- 'गीता और महावीर अलग नहीं हैं। चाहे जैन और वैष्णव अलग-अलग हैं।'

अगले प्रश्न में जिज्ञासा का भाव था, जैन पद्धति में संथारा के बारे में। 'हंस अकेला' में मुनि जी की माता जी द्वारा संथारा लिये जाने का प्रसंग है।

जिज्ञासा शांत करते हुए गुरूदेव ने कहा- 'मैं इसे दो तरह से समझाना चाहूंगा। पहला यह कि जैन चिंतन ने कहा कि जब मृत्यु तुम्हारे नजदीक हो, शरीर को छोड़े, इससे पहले तुम देह छोड़ दो। इसी में तुम्हारी वीरता है। यूँ रोते-कलपते क्या जाना? मृत्यु आनी है, यह तो निश्चित है। लेकिन इस चिंतन में मृत्यु आ नहीं रही, हम उसका वरण कर रहे हैं। संकल्पवान व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं। अगर आपने आचार्य विनोबा भावे को पढ़ा है तो उन्होंने एक जगह लिखा है, 'जीवन कैसे जिया जाये, यह सीखना हो तो गीता से सीखो और मरण कैसा हो तो जैन-चिंतन से सीखो।' और उन्होंने अंतिम समय में यह स्वीकार किया था कि इससे पहले कि यह शरीर हमको छोडे, उससे पहले हमें शरीर को छोड़ देना चाहिए।

चित्रा जी ने एक बात बड़ी अच्छी कही थी कि ज्ञान होना एक बात है और उसका उपयोग होना एक अलग बात है। लेकिन मैं इससे आगे की बात कहता हूँ जो उपयोगी होता है, वही सच्चा योगी होता है।'

अभी संथारा के बारे में जिज्ञासा शांत नहीं हुई थी। प्रश्न आया, 'समाधिमरण और संथारा में क्या अंतर है?'

गुरूदेव ने बताया, 'सिर्फ शब्द का फर्क है।' फिर प्रश्न, 'क्या इनकी भूमिका में कोई अंतर है?' गुरूदेव ने कहा- 'समाधिमरण और संथारा में कोई अंतर नहीं है। एक और शब्द है 'संलेखना'। संलेखना का अर्थ है स्वयं को संथारा या समाधिमरण के लिए तैयार करना। इसमें कई भूमिकाएं हैं। एक संथारा वह है जिसमें सिर्फ पानी लिया जाता है। दूसरा वह जिसमें पानी का भी त्याग कर दिया जाता है। तीसरा वह है, और वह बड़ा कठिन है कि जिस आसन में आप लेट गये या बैठ गये, बस उसी में शरीर को छोड़ना। मैंने जब 'अश्वघोष' का 'बुद्धचरितम्' पढ़ा। उसमें अश्वघोष लिखते हैं बुद्ध पहले तप करते हैं, उसके बाद फिर वे आसन लगाकर संकल्प करते हैं-

इहासने शुस्यतु में शरीरं, त्वगस्थि मांसं प्रलयं प्रयातु
अप्राप्य बोधिं बहुकल्प दुर्लभां, नैवासनात् काय मिदं चलिष्यति।

अर्थात् मेरा शरीर चाहे सुख जाये, अस्थि-माँस चाहे प्रलय को प्राप्त हो जायें। लेकिन बोधि को प्राप्त किये बिना मैं इस आसन से नहीं हिलूंगा।

एक बात और बताऊँ कि वैसे विधिवत् मेरा अध्ययन कहीं नहीं हुआ। और उस समय एक परम्परा और थी। कि कोई व्यक्ति वेतन लेकर पढ़ाये, यह नहीं हो सकता था। मुझे अंग्रेजी में बहुत रूचि थी, चातुर्मास में जहाँ वास होता, वहाँ कोई अंग्रजी का जानकार मिल जाता, उससे पढ़ लेते। जरूरी है भीतर की लगन, ललक।'

श्रीमती आशा जैन ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा पूरी पुस्तक पढ़ने के दौरान ऐसा लगा हम आपके साथ-साथ चल रहे हैं। इतना जीवंत वर्णन कि लगता है आप ही खुद लिख रहे हैं। ऐसा कहीं भी नहीं लगता। कि आपकी जीवनी कोई और लिख रहा है।

चित्रा जी का धीर-गंभीर स्वर फिर गूँजा, 'दरअसल एक उपन्यास के ढ़ाँचे में पूरे जीवन को गूँथा गया है, बाँधा गया है वह बंधन में मुक्त होने जैसा है। बहुत गहरी संवेदना के साथ इसे लिखा गया है। इसके बिना यह संभव भी नहीं था। जब मैंने इसे पढ़ना शुरू किया तो रात के ढाई-तीन बजे तक पढ़ती रही। फिर कविताओं की गहराई की बात ही क्या?'

कार्यक्रम समापन के पड़ाव पर था। साधना जी द्वारा धन्यवाद ज्ञापन से पहले मंजु बाई जी ने 'हंस अकेला' पर अपनी प्रतिक्रिया को चार पंक्तियों में समेटते हुए कहा-

'आपने जो दिया, वो तो किसी ने न दिया
हंस बन के मोती चुगे थे, आपने
माला का उपहार हमें दिया।'

'हंस अकेला' सचमुच जीवन-भर हंस द्वारा चुगे गये मोतियों का उपहार है।

-डॉ. विनीता गुप्ता

चुटकुले

1. अध्यापक : जिसे सुनाई न दे उसे क्या कहते हैं?
छात्र : उसे तो कुछ भी कहो सर, क्योंकि उसे सुनाई तो देगा ही नहीं।

2. चन्दन : धरती पर डॉक्टर भगवान का रूप होते हैं।
प्रवीण : इसलिए जब भी डॉक्टर के पास जाओ तो यह सोचकर जाओ कि भगवान के पास जा रहे हैं।

3. दुर्घटना ग्रस्त मरीज को मृत बताते हुए बोले काश! एक घण्टा पहले ले आते तो मैं इन्हें बचा सकता था।
परिजन : डॉक्टर साहब, एक्सीडेंट तो अभी आधे घण्टे पहले ही हुआ है।

4. एक भिखारी दूसरे भिखारी से : तुम इस सिनेमा के पोस्टर को क्यों घूर-घूर कर देख रहे हो?
दूसरा भिखारी : क्योंकि इस फिल्म का निर्माता मैं ही हूँ।

-प्रस्तुति : सिमरन

मासिक राशि भविष्यफल-दिसम्बर 2012

○ डॉ. एन.पी. मित्तल, पलवल

मेष–मेष राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह विशेष फलदाई नहीं है। व्यय की अधिकता रहेगी। मानसिक रूप से चिंता बनी रहेगी। कोई पारिवारिक उलझन भी सामने आ सकती है, सोच समझ के कदम उठाएं। दाम्पत्य जीवन में भी परेशानी महसूस कर सहते हैं। समाज में मान, सम्मान बना रहेगा।

वृष–वृष राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से इस माह आर्थिक स्थिति दुर्बल रहने की सम्भावना है। महिलाओं के लिये समय अच्छा है। उन्हें निजी कार्यो में सफलता मिलेगी। वृष राशि के जातक अपनों से ही धोखे के शिकार हो सकते हैं। विरोधी इन जातकों को परेशान कर सकते हैं। चोट लगने का खतरा है। कोई धार्मिक अनुष्ठान हो सकता है। स्वास्थ्य सामान्य तौर से ठीक रहेगा। समाज में प्रतिष्ठा बनी रहेगी।

मिथुन–मिथुन राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह परिश्रम साध्य लाभ देने वाला है। अपनी वाणी पर नियंत्रण न रखने से संकट खड़ा हो सकता है। परिवार में विरोधाभास के संकेत मिलेंगे। किसी प्रकार चोट भी लग सकती है। स्वास्थ्य सुख में कमी आयेगी। किसी वस्तु के खोने का अफसोस होगा। समाज में मान सम्मान बना रहेगा।

कर्क–कर्क राशि के जातकों को इस माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से अधिक दौड़ धूप के पश्चात् लाभ के अवसर मिलेंगे। भाई-बंधुओ की उन्नति होगी। कोई रूका हुआ पैसा भी मिल सकता है। किसी नये कार्य की योजना बन सकती है। पुराने चले आ रहे है किसी मुकदमें से छुटकारा मिलेगा। यात्रा सफल होगी। परिवार में सामन्जस्य बनाए रखना होगा।

सिंह–सिंह राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से थोड़े लाभ वाला है। घरेलू कार्यों में व्यस्तता रहेगी। परिवार में सामन्जस्य बनाए रखें। अपने नेत्रों को चोट से बचाएं। सामाजिक मान-प्रतिष्ठा बनी रहेगी। दाम्पत्य जीवन सामान्यतः सुखी रहेगा। स्वास्थ्य भी सामान्यतः ठीक रहेगा। गुस्से पर काबू रखें।

कन्या–कन्या राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से सामान्य लाभ वाला है। आप अपने बुद्धि-बल के द्वारा ही लाभ अर्जित करेंगे। निर्माण कार्य करने वालों को सफलता मिलेगी। किसी नई योजना का भी क्रियान्वयन हो सकता है। दाम्पत्य जीवन सामान्यतः सुखी रहेगा। परिवार में सामन्जस्य बनाने की कोशिश करें।

तुला–तुला राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से इस माह का पूर्वार्ध अच्छा है, उत्तरार्ध में आवश्यक कार्यों में तथा शुभकार्यों में रूकावट पैदा होगी। विरोधी तत्व परेशानी में डाल सकते हैं। अपनी सेहत का भी ध्यान रखें। क्षमता से बढ़ कर कोई कार्य न करें। वरना स्वास्थ्य विपरीत रूप से प्रभावित हो सकता है। सामाजिक प्रतिष्ठा सामान्य तौर से बनी रहेगी।

वृश्चिक–वृश्चिक राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से इस माह का पूर्वार्ध अच्छा है जिससे लाभ होगा, नये लोगों से मुलाकात होगी,अन्य मार्गों से भी आय होने की संभावना बनेगी, किंतु उत्तरार्ध में आवश्यक कार्य पूरे नहीं हो पायेंगे। यात्राओं से लाभ नहीं होगा। परिवार एवं पत्नी से मनमुटाव की स्थिति रहेगी। चोट लगने की संभावना है। बच्चों के स्वास्थ्य का भी ख्याल रखे।

धनु–धनु राशि के जातकों के लिये यह माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से लाभ वाला है। स्वंय कार्य करने वालों को इस लाभ से संतुष्टि भी रहेगी। किन्तु साझेदारी के कार्यो में विवाद संभव है। नौकरी पेशा जातकों को भी कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है स्वयं के तथा पत्नी के स्वास्थ्य के विषय में सचेत रहें। यात्राओं को जहां तक हो सके, टालें।

मकर–मकर राशि के जातकों के लिये इस माह व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से आर्थिक स्थिति डावांडोल रहेगी। साझीदारों के साथ पूराने विवाद उठ सकते है। अपनों से भी विरोध का सामना करना पड़ सकता है। नये लोगों से जब संबंध बनाए, उनसे भी सावधान रहें। किसी भी हालत में अपनी क्षमता से ज्यादा धन किसी स्कीम में न लगाएं।

कुम्भ–कुम्भ राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से इस माह आर्थिक आमदनी अनुकूल रहेगी। किन्तु व्यय की भी अधिकता होगी, जिससे चिंता बनेगी। नेत्रों को चोंट से बचाएं। शत्रु सिर उठायेंगे किन्तु पराजित होंगे। कार्यों में आगे आ रही रूकावटों पर अंकुश लगेगा। धार्मिक कार्यों में रूचि बढ़ेगी। अपने तथा अपने जीवन साथी के स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें।

मीन–मीन राशि के जातको के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह अनुकूल है किन्तु व्यापारियों के लिये सरकारी अधिकारियों की ओर से कोई मुश्किल खड़ी की जा सकती है। मानसिक चिंता बनेगी। कोई नया कार्य शरू करना कोई फायदे का सौदा नहीं है। घरेलू खर्चा भी सोच समझकर करें, कर्ज लेने की नौबत न आये।

-इति शुभम्

बढ़ता वजन- सच या सोच?

यदि आपको अपने वजन कम करने के तरीकों से नुकसान पहुंच रहा है, तो अब समय आ गया है कि आप अपनी रणनीतियों के बारे में फिर में सोचे और अपनी शारीरिक संकेतों को सुनने का प्रयास करें।

मनुष्य का शरीर संपूर्णता की दृष्टि से बना हुआ है। हमारे शरीर में साठ लाख कोशिकाएं होती हैं। जो हमारे प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य को बनाए रखने के लिए क्रमबद्ध रूप से काम करती हैं। वास्तव में, इन्हें 'फिट रहने' के लिए ही

'प्रोग्राम' किया जाता है।

तो फिर हमारा वजन क्यों बढ़ता है?

और हम इसे अपनी इच्छा से कम क्यों नहीं कर पाते? क्यों हममें से अधिकांश लोगों के लिए अपना बढ़ता वजन कम करना एक कभी न खत्म होने वाला मुश्किल युद्ध बन जाता है?

दरअसल, इसका जवाब हमारे सोचने के तरीके में छिपा हुआ है। इसके अलावा, इसका एक कारण यह भी है कि हमें अपने शरीर और भोजन से संबंधित बहुत सी बातें नहीं सिखाई जा रही हैं। जब आप अपना वजन कम करने की कोशिश करते हैं, तो आपको सबसे पहले यह जानने की जरूरत है कि आपके शरीर में भोजन की एक भौतिक सुरताल बनी होती है।

अपनी भौतिक ताल का अनुसरण करें

भोजन का चक्र एक दिन में आठ-आठ घण्टे के तीन चरणों में विभाजित होता है। इसका सबसे पहला चरण बहुत ही उपयोगी चक्र माना जाता है। इसकी शरुआत दोपहर के 12 बजे होती है और यह शाम को आठ बजे तक चलता है। हमारा शरीर इसी दौरान भोजन ग्रहण करने और उसे सामान्य रूपों में तोड़ने का काम करता है। इसके बाद, यह पचा हुआ भोजन छोटी आंतों के माध्यम से रक्त धाराओं में अवशोषित किया जाता है।

इससे अगला चरण, जो रात को 8 बजे से सुबह के 4 बजे तक चलता है- एक समावेशी चरण है। इस चरण के दौरान, सभी पोषक तत्त्व कोशिकाओं में अवशोषित किए जाते हैं। इसके अलावा, इस दौरान इन्हें बहुत से क्रिया-कलापों हेतु काम करने के लिए सुसज्जित किया जाता है।

इसके बाद, उन्मूलन का चरण आता है जिसमें कोशिकाएं चयापचय के काण हुए सभी व्यर्थ और विषैले पदार्थों को रक्त-शिराओं में छोड़ देती हैं जहां से उन्हें पसीने, पेशाब और मल के माध्यम से हमेशा-हमेशा के लिए बाहर निकाला जा सकता है।

तो, इस तरह हमारा शरीर इसकी पूर्णता को बनाए रखता है। अब यदि कोई व्यक्ति दिन में 12 बजे से पहले और रात को 8 बजे के बाद खाता है, तो इस भोजन को पचाने के लिए जिस ऊर्जा की जरूरत पड़ती है, उसके लिए हमारा शरीर कोशिकाओं की वह ऊर्जा ले लेता है, जो अवशोषण और उन्मूलन के काम के लिए जरूरी होती है। परिणाम स्वरूप, इन सबमें उपरोक्त दो प्रक्रियाएं अधूरी रह जाती हैं और हमारा शरीर सभी पोषक तत्त्वों को आत्मसात् नहीं कर पाता। यह उन सभी पदार्थों को मल के माध्यम से बाहर नहीं निकाल पाता जो हमारे शरीर के लिए बेकार और अनुपयोगी होते हैं। परिणाम स्वरूप, यह हमें अतिरिक्त वजन और जीवनशैली से संबंधित बहुत सी दूसरी बीमारियों की ओर ले जाता है

-प्रस्तुति : अरूण तिवारी

मानव-मंदिर मिशन का 31वाँ वार्षिकोत्सव 2 दिसम्बर, रविवार को

पूज्य आचार्यश्री द्वारा संस्थापित शिक्षा, सेवा, साधना को समर्पित मानव मंदिर मिशन का 31वाँ वार्षिकोत्सव 2 दिसम्बर, 2012, रविवार प्रातः 10:30 बजे जैन आश्रम परिसर, सराय काले खाँ के सामने आयोजित हो रहा है। समारोह को सान्निध्य मिलेगा पूज्य आचार्यश्री रूपचन्द्रजी तथा पूज्या प्रवर्तिनी साध्वीश्री मंजुलाश्री जी का। अध्यक्षता-समाज-सेवी संरक्षक श्रीमती ताजदार बाबर, मुख्य अतिथि दक्षिण दिल्ली की मेयर श्रीमती सविता गुप्ता, विशिष्ट अतिथि निगम पार्षद् श्री फरहाद सूरी तथा श्रीमती सिम्मी जैन होंगे। सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री रिखबचन्द जैन स्वागताध्यक्ष होंगे। समारोह में पूज्य आचार्यश्री तथा पूज्या साध्वीश्री के विशेष प्रेरक प्रवचनों के अलावा मानव मंदिर गुरूकुल के बच्चों द्वारा आकर्षक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाएंगे। उल्लेखनीय है मानव मंदिर गुरूकुल के बच्चों ने अपनी योग्यता तथा प्रतिभा एवं श्रम-लगन से आज एक राष्ट्रीय पहचान बना ली है। तभी तो पर्लियामेंट चिल्ड्रन कमिटी द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित विविध प्रतियोगिताओं में गुरूकुल के बच्चों को विशेष रूप से आमंत्रित किया जाता है। इस वर्ष 19 नवम्बर को संसद-भवन में आयोजित प्रतियोगिता में गुरूकुल के बच्चों के साथ लोक सभा अध्यक्ष मीरा कुमार ने विशेष संवाद के साथ-साथ फोटो भी खिंचवाई। मानव मंदिर मिशन की प्राकृतिक योग चिकित्सा केन्द्र सेवाधाम हॉस्पिटल की प्रगति भी उत्साह वर्धक है।

-राजधानी की प्रबुद्ध महिला साहित्यकारों की प्रतिनिधि संस्था चेतनामयी की ओर से 'हंस अकेला' की चर्चा-गोष्ठी में प्रश्नों का समाधान देते हुए पूज्य आचार्यवर।

-'चेतनामयी' की अध्यक्षा यशस्वी साहित्यकार श्रीमती चित्रा मुद्गल गोष्ठी का शुभारंभ करते हुए।

-श्रीमती साधना जैन स्वागत-भाषण करती हुई।

-पूज्य गुरूदेव के साथ सौरभ मुनि, लेखिका डॉ. विनीता गुप्ता तथा श्रीमती चित्रा मुद्गल।

-प्रबुद्ध महिला साहित्यकारों के ग्रुप फोटो में (बायें से) श्री अरूण तिवारी, विनीताजी, चित्राजी, मंजुबाई जैन, करूणा शर्मा, मंजु मित्तल, आदि आदि।